

आज कुन्दकुन्दाचार्य की आरोहण पदवी का दिन है। अपने मागशर कृष्ण ८ है। सिद्धान्त और आगम के हिसाब से आज पोष कृष्ण ८ है। कृष्ण १ वीं बैठती है न? शुक्ल के पश्चात् यह पोष कृष्ण ८ है। इसमें भगवान कुन्दकुन्दाचार्य को आज आरोहण आचार्यपद दिया था। आचार्य पदारोहण का यह दिवस है। जिन्हें, 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो'—तीसरे पद में जो आये हैं। जिनका भरत पर अनन्त उपकार वर्तता है। इन्होंने जो समयसार आदि शास्त्र रचे हैं, वे साक्षात् भगवान को सुनकर और आकर ये रचे हैं। उनकी यह तिथि का आचार्य की पदवी का दिवस है। आहाहा! उन्होंने आचार्यपदवी में पाँच पद का आराधन किया, चैतन्य का आराधन किया। परमपारिणामिकस्वभाव ज्ञायकभाव, यह अपने आ गया है। समस्त मुनियों के हृदयकमल में हंस वर्तता है। आ गया है न? आहाहा!

ये कुन्दकुन्दाचार्य आचार्य हैं। ऐसे ऊपर से दे, इसलिए आचार्यपद आ जाए - ऐसा नहीं है। सहज अन्तर की दशा है। आहाहा! जिन्हें तीन कषाय का अभाव हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र वैभव प्रगट हुआ। यह (समयसार) ५वीं गाथा में कहा है - प्रचुरस्वसंवेदन। बहुत ही आनन्द का वेदन आया है। जो स्वरूप से सौख्यरूप। सौख्यरूप, सुखस्वरूप, सुखस्वभाव, स्वभाव, सुखस्वभावस्वरूप आत्मा है, उसका पर्याय में प्रचुर वेदन वर्तता है। आहाहा! उसे यहाँ आचार्य पदवी कहा जाता है। अलौकिक बात है, भाई! पाँच आचार और परम उपयोग। प्रवचनसार में कहा है न? आचार्य, उपाध्याय और साधु। परम पंच आचार के उपयोग में होते हैं। विकल्प में नहीं। अन्दर निर्विकल्प परम आचार, परम ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार, ऐसे परमशुद्धोपयोग... आहाहा! उसमें विचरनेवाले, उन्हें संघ ने आचार्य पद दिया... ऐसी यह बड़ी तिथि है। तिथि पूर्व की अपेक्षा से कहें तो वर्तमान में ही- आज ही यहाँ भगवान को आचार्यपना दिया हो। आचार्य पद आज ही दिया हो, ऐसा नैगमनय से भूतकाल को वर्तमान काल में कहा जाता है। आहाहा!

इसमें—नियमसार में कहा है न? कि सिद्ध को भी गत काल के अनन्त बहिरात्मा आदि जो हुए, वे भी अभी पूर्व की अपेक्षा से उन्हें (बहिरात्मा आदि) कहा जाता है। नियमसार (में) पहले आ गया। आहाहा! सिद्ध को भी बहिरात्मा, अन्तरात्मा ऐसी सब दशाएँ जो व्यतीत हो गयी, सब वर्तमान में भी नैगमनय से कहा जा सकता है। आहाहा! पहले भाग में है। ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य को तो परमात्मपद होनेवाला है। आहाहा! कहा न? हम तो केवलज्ञानमय हैं। केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसुखस्वरूप हैं और हम तो परम केवलज्ञानादि हैं। आहाहा! शक्ति से तो हैं... शक्ति से तो हैं, परन्तु व्यक्ति से हम परमात्मदशा, मोक्ष के मार्ग में हैं, हम अभी मोक्ष में ही हैं—ऐसा कहते हैं। आहाहा!

प्रवचनसार में उनकी स्वयं की गाथा है। मोक्षमार्ग को मोक्षतत्त्व ही कहा (गाथा २७२)। हम मोक्ष में ही हैं। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, उसे तो वास्तव में तो उसमें आरूढ़ होना, वह आचार्यपद है। बाहर में तो व्यवहार... अन्तर में आनन्दस्वरूप में आरूढ़ होना। आहाहा! वह अब यहाँ कहते हैं।

श्लोक-१२९

और (इस ९७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज चार श्लोक कहते हैं) :—

(वसंततिलका)

आत्मानमात्मनि निजात्मगुणाढ्यमात्मा,
जानाति पश्यति च पञ्चम-भाव-मेकम् ।
तत्याज नैव सहजं पर-भाव-मन्यं,
गृह्णाति नैव खलु पौद्गलिकं विकारम् ॥१२९॥

(वीरछन्द)

निज आत्मिक गुण से समृद्ध निजात्म पञ्चमभाव स्वरूप ।
उसे एक को ही यह आत्मा निज में जानन देखनरूप ॥
पञ्चम एक स्वभाव सहज को उसने छोड़ा कभी नहीं ।
अन्यभाव पुद्गल विकार जो उन्हें ग्रहण ही करे नहीं ॥१२९ ॥

[श्लोकार्थ :] आत्मा आत्मा में निज आत्मिक गुणों से समृद्ध आत्मा को—
एक पंचमभाव को—जानता है और देखता है; उस सहज एक पंचमभाव को उसने
छोड़ा नहीं ही है तथा अन्य ऐसे परभाव को—कि जो वास्तव में पौद्गलिक विकार
है उसे—वह ग्रहण नहीं ही करता ॥१२९ ॥

श्लोक -१२९ पर प्रवचन

देखो, और (इस ९७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज चार श्लोक कहते हैं) है ? १२९वाँ श्लोक है । १२९, ऊपर का पढ़ा गया है ।

आत्मानमात्मनि निजात्मगुणाढ्यमात्मा,
जानाति पश्यति च पञ्चम-भाव-मेकम् ।

तत्याज नैव सहजं पर-भाव-मन्यं,
गृह्णाति नैव खलु पौद्गलिकं विकारम् ॥१२९॥

आहाहा! मार्ग कोई अलौकिक है। साधुपद से आचार्यपद, मुनिपद कोई अलौकिक है। वास्तव में तो पाँच पद स्वरूप आत्मा है, अन्दर स्वभाव ही उसका है, तब बाहर में आता है, प्रगट होता है। जो आचार्यपद प्रगट हुआ, वह तो अन्दर स्वभाव में है, वह बाहर में प्रगट होता है। वह यहाँ कहते हैं कि आत्मा... अपूर्व बात है, बापू! आहाहा! यह आत्मा अन्दर इस देह से भिन्न है, यह (देह) तो मिट्टी है, जड़ है। शरीर, मिट्टी, अजीव धूल है। अन्दर कर्म मिट्टी-धूल है। वे तो आत्मा के प्रदेश-पर्याय में भी नहीं हैं परन्तु पुण्य और पाप के, दया, दान, काम, क्रोध के परिणाम वे भी वस्तु में नहीं हैं, वे आत्मा के नहीं हैं, आत्मा की चीज़ नहीं है। आहाहा! उसे यहाँ आत्मा परमेश्वर कहते हैं।

यह आत्मा आत्मा में... आहाहा! यह आत्मा आत्मा में... परम शुद्धस्वभाव जो त्रिकाली आत्मा, वह आत्मा आत्मा में निज आत्मिक गुणों से समृद्ध... अपने आत्मा के गुण जो ज्ञान-दर्शन-आनन्द, ऐसे जो अनन्त गुणों से भरपूर भगवान आत्मा अन्दर है... आहाहा! जिसके माहात्म्य की वाणी में भी माहात्म्य पूरा नहीं आया। ऐसा वह प्रभु अन्दर देह में विराजमान है। उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। यहाँ कहा न? आत्मिक गुणों से समृद्ध... है। आहाहा!

लोग यह बाहर के धूलवाले हों, उन्हें ऐसा कहते हैं न? कि यह पच्चीस लाख का आसामी, पचास लाख का आसामी, करोड़ का आसामी। चिमनभाई! यह चिमनभाई का सेठ पचास करोड़ का आसामी है। पचास करोड़ का आसामी। धूल का। वह नहीं, बापू! वह तो मिट्टी, धूल, जगत की चीज़ है। वह कुछ तुझमें नहीं है, तू उसमें नहीं है, तेरी वह नहीं है परन्तु तुझमें पुण्य और पाप हो, उसमें भी तू नहीं है, वे तुझमें नहीं है, वे तेरे नहीं हैं, तू उनमें नहीं है, वे तुझमें नहीं हैं। आहाहा! अरे! ऐसी बात।

इस जगत में रहना, संसार का धन्धा-पानी। कठिन काम। रमणीकभाई पूछते थे। यह पाँच वर्ष दुकान का धन्धा किया, तब रस था या नहीं? ऐसा पूछते थे। पहले से मैं तो भगत कहलाता था। दुकान चलती थी, घर की-पिताजी की दुकान थी परन्तु मैं भगत ही कहलाता था। दुकान चले, चलावे, तथापि पहले वस्तु धर्म यह। शास्त्र श्रवण, वांचन

पहला। फिर दुकान। अठारह वर्ष की उम्र से। यह तो नब्बे वर्ष हुए। शरीर को तो नब्बे वर्ष हुए। यह तो ७२ वर्ष पहले की बात है। आहाहा! उसमें कहीं रुचि नहीं थी, रस नहीं था, रस। अवसर आया तो भाई को कहा, बापू! मैं नहीं रह सकूँगा। यह संसार और दुकान मैं नहीं चला सकूँगा। मैं दुकान छोड़ देता हूँ। अरे! यह कहाँ दुकान, कहाँ राग, कहाँ प्रभु! आहाहा! वह बाहर की चीज़ तो जड़ कहीं रही, वह तो आत्मा कर नहीं सकता परन्तु आत्मा में जो कुछ दया, दान, व्रत, भक्ति के काम, क्रोध के भाव होते हैं, वह भी इसका कर्तव्य नहीं है, वह इसका कार्य नहीं है। व्याप्य-व्यापक अपने आ गया है। वह व्याप्य नहीं है। आत्मा का व्याप्य-अवस्था नहीं है। विकारी आत्मा का कार्य नहीं है। आहाहा!

भगवान् चैतन्यस्वरूप अपने गुणों से समृद्ध है, ऐसा कहा। पर के कारण नहीं, राग के कारण नहीं। आहाहा! राग, वह विकार है। जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह भाव भी राग है, विकार है। उससे समृद्ध आत्मा नहीं है। आहाहा! है इसमें? **आत्मा आत्मा में निज आत्मिक गुणों से समृद्ध...** है। निज आत्मा के गुणों से समृद्ध है। आहाहा! कब बैठे और कब विचार करे? यह दुनिया ऐसी की ऐसी चली जाती है। आहाहा! **निज आत्मिक...** पहले दो शब्द लिये। **आत्मा आत्मा में निज आत्मिक गुणों से समृद्ध...** है। आत्मा, आत्मा में अपने गुणों से समृद्धिवाला है। अपने गुणों की समृद्धि उसमें भरी है। आहाहा!

यहाँ तो एक मूला अच्छा मिले। सब्जी लेने जाए, वहाँ चार आने की सब्जी मिले, एक मूला मुफ्त देना। मूली-मूली। लड़की... देखा होवे तो कहे, लाओ भाई... दूँ। एक मूली मिले वहाँ प्रसन्न हो जाता है। आहाहा! प्रभु! तू कहाँ गया? प्रभु! तू कितना है? कहाँ है? वीतराग परमेश्वर पुकारते हैं। प्रभु! तू कितना है? कहाँ है? तू आत्मा तो आत्मिक गुणों से समृद्ध है। आहाहा! ऐसा सुना नहीं होगा। आत्मा, आत्मा करे। आत्मा है। देह में आत्मा है। हो गया जाओ। आत्मा हिले और चले, वह आत्मा। अरे! प्रभु! हिलना-चलना तो कहीं रह गया परन्तु उसमें अल्पता भी नहीं। पुण्य-पाप के विकार भी नहीं। आत्मा के गुण से समृद्ध है - ऐसा कहते हैं। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य भगवान् का (आचार्यपद) तिथि आरोहण का दिवस है। वे कहते हैं कि **आत्मा आत्मा में निज आत्मिक गुणों से...** अर्थात् निज स्वरूप के गुणों से **समृद्ध आत्मा को...** आहाहा! ऐसा जो समृद्ध भगवान् आत्मा अन्दर विराजता है। आहाहा! कभी

सुनने को नहीं मिले, खबर नहीं मिले। **एक पंचमभाव को—जानता है...** वह शुद्धात्मा को अर्थात् **एक पंचमभाव को—जानता है...** आहाहा! धर्मी जीव, सम्यग्दृष्टि जीव, वीतराग ने कहाँ वैसा यह आत्मा, आत्मा में आत्मा के गुणों से समृद्ध ऐसे एक को जानता है। आहाहा! ऐसा कहीं सुनने को नहीं मिलता। झवेरचन्दभाई! यह तुम्हारा मामा का सब संसार का कहा था। आहाहा!

यह भगवान आत्मा स्वयं **आत्मा आत्मा में...** आहाहा! **निज आत्मिक गुणों से समृद्ध...** से भरपूर भगवान एकरूप है। आहाहा! क्या शब्द! पार नहीं आता। आत्मा, अन्दर भगवान आत्मा अन्दर वस्तु, वह तो भगवत्स्वरूप है, परमेश्वरस्वरूप है। परमेश्वर हुए, अरिहन्त और सिद्ध (हुए), वे कहाँ से हुए? बाहर से हुए हैं? वह अन्दर में है, वैसा स्वरूप बाहर आया है। आहाहा! अरे, इसने कभी जाना नहीं, इसने माना नहीं, इसलिए इसने माण्यो नहीं, जाना नहीं, माना नहीं, इसलिए माण्यो नहीं अर्थात् अनुभव नहीं किया। आहाहा! यह वर को छोड़कर सब बारात कर दी। भटकने की पट्टी से चार गति में भटकता है। आहाहा! क्या शब्द प्रयोग किये हैं?

आत्मिक गुणों से समृद्ध आत्मा को... तीन और चार बार आत्मा शब्द आया है। है न? निज गुण की समृद्धि। अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त वीतरागता से भरपूर यह भगवान है। ऐसी अपनी समृद्धि से भरपूर आत्मा को **एक पंचमभाव को—जानता है...** आहाहा! यह पंचमभाव जो त्रिकाली स्वभावभाव, जिसे कोई अपेक्षा नहीं। अन्दर त्रिकाली एकरूप परमात्मा है। स्वयं ही परमात्मस्वरूप है। आहाहा! एक को ही जो जानता है। **देखता है...** आहाहा! जो आत्मा ऐसा अन्दर जानता है, देखता है। आहाहा! वह सब बाहर का देखना छोड़कर अन्दर स्वयं भगवान है, उसे देखता है। बाहर का जानना छोड़कर अन्दर जानने में अपने को जानता है। आहाहा!

उस सहज एक पंचम भाव को उसने छोड़ा नहीं ही है... आहाहा! ऐसा जो प्रभु, अपनी सत्ता का अस्तित्व, पंचमभावस्वरूप, पारिणामिकभावस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप, अनादि-अनन्त स्वरूप, कभी उसने छोड़ा नहीं है। पंचम भाव को उसने... पंचम भाव समझ में आता है? पाँच भाव है न? उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक और पारिणामिक। चार पर्याय है और ऐसे गुण स्वभाव है। पंचम भाव वह स्वभाव है तथा उदय, उपशम,

क्षयोपशम, क्षायिक, यह चार उसकी पर्याय है। गुण और पर्याय उसकी, परन्तु खबर नहीं होती और हम जैन वाड़ा में पड़े हैं, जैन हैं। आहाहा! अरे जिन्दगी चली जाती है। मूल वीतरागमार्ग कहते हैं, उसे समझने की दरकार नहीं करता। आहाहा!

कहते हैं, एक पंचम भाव को उसने छोड़ा नहीं... एक शब्द प्रयोग किया है। सहज एक पंचम भाव को उसने छोड़ा नहीं ही है... भगवान ऐसा का ऐसा विराजता है। आहाहा! अपने गुण की समृद्धि से, अपने गुण की ऋद्धि से, अपने अनन्त गुण की सामग्री से, शुद्धि से, ऋद्धि से एक को उसने कभी छोड़ा नहीं है। आहाहा! ऐसा कैसा उपदेश? वह कहे कि दया पालना, व्रत करना, सामायिक करना, प्रौषध करना, प्रतिक्रमण करना, ऐसा तो समझ में आये। ऐसा तो अनन्त बार किया है। यह सब शुभराग की क्रिया है, इसमें कहीं आत्मा-फात्मा नहीं है। वहाँ आत्मा नहीं आता और आत्मा को वहाँ जरा भी लाभ नहीं होता। आहाहा!

ऐसा जो पंचम भावरूप आत्मा, अर्थात् पर्याय में उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय है। वह नहीं। यह तो त्रिकाली ध्रुव ऐसे पंचम भाव को उसने छोड़ा नहीं ही है... आहाहा! जब देखो तो विराजमान भगवान पूर्णानन्द ही है परन्तु तेरे देखने के आलस से पड़ा रहा है। 'नयन ने आलसे रे न निरखया नयने हरि' हरि अर्थात् आत्मा। राग और द्वेष और अज्ञान को व्यवहार से घात करे, उसे यहाँ हरि और आत्मा, वह हरि। दूसरा हरि-वरि कोई कर्ता-फर्ता नहीं है। कोई ईश्वर है और ईश्वरकर्ता हरि है, वह नहीं। हरि तो यहाँ भगवान आत्मा हृदय में विराजता है। श्रीमद् ने ऐसा कहा है। अधिष्ठाता एक है, वह मैं हृदय में देखता हूँ। वह अधिष्ठाता यहाँ है। बाहर में कहीं है नहीं। आहाहा!

तथा अन्य ऐसे परभाव को... पंचम स्वभावभाव कभी छोड़ा नहीं। ध्रुवभाव, नित्यभाव, अविचल नित्य प्रभु! - ऐसे भाव को कभी छोड़ा नहीं। उसे छोड़े अर्थात् नित्य को छोड़े तो क्या होगा? नित्यपना नहीं रहेगा तो वस्तु नहीं रहेगी। वह तो कभी छोड़ा ही नहीं। आहाहा! तथा अन्य ऐसे परभाव को... आत्मा के अतिरिक्त दूसरे भाव को, कि जो वास्तव में पौद्गलिक विकार है... वह तो पुद्गल का विकार है। पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम-क्रोध, वह तो पुद्गल का विकार है, प्रभु! तेरी चीज नहीं है। आहाहा! तुझमें तो चैतन्य चमत्कार आनन्द का नाथ पड़ा है, प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द की समृद्धि से

भरपूर प्रभु तू है। अतीन्द्रिय वीतरागस्वभाव से भरपूर भगवान आत्मा है। (यदि ऐसा) न होवे तो वीतरागता आयेगी कहाँ से? यह प्राप्त की प्राप्ति है। है, उसमें से आता है। आहाहा! ऐसा उपदेश!

ऐसे परभाव को—कि जो वास्तव में पौद्गलिक विकार है... आहाहा! वह तो वास्तव में तो इन्होंने क्षायिकभाव भी गिना नहीं है। उसे पौद्गलिक विकार गिना है। चार भाव को विकार गिना है। आता है न? नियमसार में अन्दर आता है। विकार क्या? कि जिसे कर्म की अपेक्षा आयी न? वस्तु तो त्रिकाल एकरूप प्रभु है। अनन्त-अनन्त गुण की समृद्धि से भरपूर भगवान है, उसे किसी कर्म के अभाव और कर्म के सद्भाव की कोई अपेक्षा ही नहीं है। क्षायिकभाव और क्षयोपशमभाव में कर्म के अभाव की अपेक्षा है। उदय में कर्म की अपेक्षा है। उसमें अभाव की अपेक्षा है। एक यह अपेक्षारहित चीज़ है और वास्तव में उस पंचम भाव के अतिरिक्त... आहाहा!

अन्य ऐसे परभाव को—कि जो वास्तव में पौद्गलिक विकार है... आहाहा! अनन्त गुण की समृद्धि से भरपूर भगवान, इसके अतिरिक्त सब विकार है। आहाहा! है? उसे—वह ग्रहण नहीं ही करता। वह द्रव्यस्वभाव, ज्ञायकभाव, वह कभी विकार को पकड़ता नहीं। निज को छोड़ता नहीं और पर को ग्रहण नहीं करता। अरे रे! ऐसी बातें। आहाहा! ऐसा जैनधर्म। वीतराग जैन परमेश्वर, त्रिलोकनाथ को सर्वज्ञरूप से ज्ञात हुआ, वह यह बात भगवान जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा!

अनन्त आत्माएँ अपने अनन्त गुण की समृद्धि से भरपूर भगवान ने देखे हैं। आहाहा! परभाव कभी स्पर्श नहीं किया और जो भाव है, उसे कभी नहीं छोड़ा, कभी अल्पज्ञरूप से भी नहीं हुआ। विकाररूप से तो हुआ नहीं परन्तु वह स्वभावभाव-स्वभावभाव त्रिकाली स्वभावभाव, त्रिकाली गुण समृद्धिभाव, भगवान, वह अल्पभाव से हुआ नहीं। आहाहा! अल्पभाव को और विकार को कभी ग्रहण नहीं किया। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन का विषय है। उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं, बापू! यह तो लोगों को किसी को कुछ खबर नहीं होती। देव-गुरु-शास्त्र को मानो, वह समकित। नवतत्त्व को मानो तो समकित हो गया। चल निकले। आहाहा!

तीन लोक के नाथ जिनेश्वर परमात्मा का यह हुकम है। कुन्दकुन्दाचार्य यह हुकम

लेकर आये हैं। भगवान के पास गये थे। सीमन्धरस्वामी भगवान प्रभु महाविदेह में विराजमान हैं। सीमन्धरस्वामी तीर्थकर विराजते हैं, वहाँ दो हजार वर्ष पहले आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर यह शास्त्र रचे हैं। आहाहा! भारी गजब बात! आत्मा आत्मा में... आत्मा में गुण समृद्धि से भरपूर आत्मा, उसे कभी छोड़ता नहीं और अन्य भाव को कभी ग्रहण नहीं करता। आहाहा! यह भाषा थोड़ी, प्रभु! मार्ग बहुत अलौकिक है। आहाहा! उसे तो अभी सम्यग्दर्शन कहते हैं। सम्यक्चारित्र तो दूसरी बातें हैं, बापू! वह चारित्र कहाँ? लोग मानते हैं, वह चारित्र-फारित्र नहीं है। वस्त्र छोड़े और दीक्षा ली, महाव्रत, वह दीक्षित चारित्र-फारित्र नहीं है। आहाहा! अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं, वहाँ चारित्र कहाँ आया? आहाहा!

श्लोक बहुत सरस है। पद्मप्रभमलधारिदेव टीका करनेवाले ने यह श्लोक कहा है। उसे—वह ग्रहण नहीं ही करता। आहाहा!

श्लोक-१३०

(शार्दूलविक्रीडित)

मत्स्वान्तं मयि लग्नमेतदनिशं चिन्मात्रचिन्तामणा-
वन्यद्रव्यकृताग्रहोद्भवमिमं मुक्त्वाधुना विग्रहम् ।
तच्चित्रं न विशुद्ध-पूर्ण-सहज-ज्ञानात्मने शर्मणे,
देवाना-ममृताशनोद्भव-रुचिं ज्ञात्वा किमन्याशने ॥१३०॥

(वीरछन्द)

अन्य द्रव्य के आग्रह से उत्पन्न सभी विग्रह तजकर।
शुद्ध पूर्ण ज्ञानात्मक सुख की प्राप्ति हेतु मेरा अन्तर ॥
चिन्तामणि चैतन्यमात्र में लीन निरन्तर अचरज क्या।
अमृतभोजी सुर को अन्य अशन से कहो प्रयोजन क्या? ॥१३०॥

[श्लोकार्थः] अन्य द्रव्य का १आग्रह करने से उत्पन्न होनेवाले इस २विग्रह को अब छोड़कर, विशुद्ध-पूर्ण-सहजज्ञानात्मक सौख्य की प्राप्ति के हेतु, मेरा यह निज अन्तर मुझमें—चैतन्यमात्र-चिन्तामणि में निरन्तर लगा है—उसमें आश्चर्य नहीं है, कारण कि अमृत भोजनजनित स्वाद को जानकर देवों को अन्य भोजन से क्या प्रयोजन है? (जिस प्रकार अमृत भोजन के स्वाद को जानकर देवों का मन अन्य भोजन में नहीं लगता, उसी प्रकार ज्ञानात्मक सौख्य को जानकर हमारा मन उस सौख्य के निधान चैतन्यमात्र-चिन्तामणि के अतिरिक्त अन्य कहीं नहीं लगता) ॥१३० ॥

श्लोक -१३० पर प्रवचन

श्लोक १३०।

मत्स्वान्तं मयि लग्नमेतदनिशं चिन्मात्रचिन्तामणा-
वन्यद्रव्यकृताग्रहोद्भवमिमं मुक्त्वाधुना विग्रहम् ।
तच्चित्रं न विशुद्ध-पूर्ण-सहज-ज्ञानात्मने शर्मणे,
देवाना-ममृताशनोद्भव-रुचिं ज्ञात्वा किमन्याशने॥१३०॥

किमन्याशने... आहाहा! देवों को अमृत का भोजन है। देव हैं न देव? चार गति हैं न? यह मनुष्य, तिर्यच, नीचे नरक हैं और ऐसे देव हैं। उन देव को हजारों वर्ष में अमृत के भोजन की डकार आती है। जिन्हें अमृत के भोजन का स्वाद है, उन्हें रोटीरूपी रांधना और बनाना उन्हें कहाँ से आया? आहाहा! यह तो दृष्टान्त दिया है।

अन्य द्रव्य का आग्रह करने से उत्पन्न होनेवाले इस विग्रह को अब... विग्रह है न? रागद्वेषादि कलह... राग-द्वेष है, पुण्य-पाप है, वह कलह है। सूक्ष्म बात, भगवान! यह तो बहुत बातें, भाई! यह हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना तो कलह है परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह भी कलह, क्लेश और राग है। आहाहा! एक

१. आग्रह=पकड़; ग्रहण; लगे रहना वह।

२. विग्रह=(१) रागद्वेषादि कलह; (२) शरीर।

शुभराग है और एक अशुभराग है। दोनों राग है। आहाहा! यह राग-द्वेष आग्रह करने से उत्पन्न होनेवाले इस विग्रह को... रागद्वेषादि कलह; शरीर। यह राग-द्वेष, वह शरीर है। आहाहा!

एक ओर भगवान् चैतन्य का अनन्त गुण की समृद्धि से भरपूर शरीर तथा एक ओर पुण्य-पाप के क्लेश से भरपूर शरीर। आहाहा! एक ओर अमृत का सागर भगवान् अन्दर। पूर्ण अमृत भरपूर। सिद्ध भगवान् हुए, वह अमृतपना कहाँ से आया? अन्दर से। अमृत अर्थात् स्वयं मरे नहीं और दूसरे को मारे नहीं। दूसरे से मरे नहीं, दूसरे को मारे नहीं, स्वयं मरे नहीं। ऐसा जो अमृत। आहाहा! ऐसा जो यह भगवान् अन्दर ध्रुव नित्य अमृतस्वरूप भगवान्, वह अमृत है। अ-मृत। वह कभी मरता नहीं। अमृत है, वह कभी किसी को मारता नहीं। अमृत ऐसा है, वह कभी किसी से मरता नहीं। आहाहा! ऐसा जो अमृत का सागर प्रभु! तिथि का आचार्य के पदारोहण का दिवस है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, प्रभु! प्रभु कहकर ही यहाँ तो बुलाते हैं। भगवान् आत्मा। आहाहा!

अन्दर देह-देवल में... यह (शरीर) तो मिट्टी और हड्डियाँ - चमड़ी है, बापू! अन्दर पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वह भी विकार-विकाररूपी शरीर है। यह तेरा शरीर, विकार शरीर से भिन्न है। शरीर अर्थात् ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप वह शरीर तेरा भिन्न है। आहाहा! 'ज्ञानविग्रह' ऐसा पाठ है। ज्ञानरूपी शरीर। यह (विकार) क्लेशरूपी शरीर... आहाहा! शुभ और अशुभराग, वह क्लेशरूपी शरीर है। कठिन बात है, प्रभु! नयों को पहले सुनना कठिन पड़ता है। अनादि से वस्तुस्वरूप तो यह है। वह अमृत का सागर अन्दर डोलता है। उस अमृत के सागर से भरपूर भगवान्! अ-मृत किसे कहें? कभी मरे नहीं, किसी को मारे नहीं, किसी से मरे नहीं। आहाहा! कोई उस ध्रुव को स्पर्श नहीं कर सकता। आहाहा!

ऐसा जो अमृतस्वरूप भगवान्। आहाहा! उस द्रव्य का आग्रह करने से... परद्रव्य का आग्रह करने से—शरीर मेरा, वाणी मेरी, पुण्य मेरा, दया, दान, व्रत मेरे, ऐसे विकल्प राग है, वे मेरे। ऐसा आग्रह करने से उत्पन्न होनेवाले इस विग्रह को... होनेवाले क्लेश को, होनेवाले इस विग्रह के शरीर को अब छोड़कर,... अब छोड़कर। यह क्या कहा? बापू! अब तो छोड़, नाथ! प्रभु! तुझे पकड़ने में अनन्त काल गया। अनन्त काल व्यतीत हुआ, नाथ! तेरे ऊपर ऐसे भवभ्रमण के डण्डे सिर पर पड़े हैं। अब तो छोड़... अब तो छोड़...

आहाहा! इससे अब दूसरा क्या कहें? अब तो छोड़। अर्थात्? अभी तक किया, प्रभु! तूने उल्टा बहुत किया और चौरासी के भवभ्रमण-अवतार में अनेक योनियों में अनंत अवतार कर चुका है, बापू! आहाहा! अब तो छोड़। आहाहा!

अब तो प्रभु के ऊपर नजर डाल। जो अमृत सागर है, वहाँ नजर डाल। आहाहा! तब संसार छूटेगा। इसके बिना संसार छूटे, ऐसा नहीं है। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा और करोड़ों के दान करे, बड़े मन्दिर बनावे मानो कितने ही। भाई गये न? चन्दुभाई, बड़ोदरा में मन्दिर बनाते हैं न? एक लाख पैंतीस हजार डाले हैं। उन्होंने स्वयं दिये हैं। एक लाख पैंतीस हजार। चन्दुभाई नहीं थे? उसमें सायला के भभूतमल ने आठ लाख रुपये दिये, बेंगलोर में मन्दिर बनाया न? दिगम्बर जिनमन्दिर (बनाया उसमें) आठ लाख का, चार लाख दूसरे जुगराजजी ने (दिये)। मुम्बई में महावीर मार्केट है, स्थानकवासी है, करोड़पति है, उन्होंने चार लाख दिये। बारह लाख का मन्दिर बनाया। परन्तु उनसे कहा, भाई! तेरे बारह लाख, बीस लाख, पचास लाख... आहाहा! यह राग की मन्दता हो तो शुभभाव पुण्य है।

पुण्य है, क्लेश है, राग है, वह कषाय का शरीर है; चैतन्य का शरीर नहीं। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! दो करोड़ रुपये हैं तो उसमें से आठ लाख रुपये दिये, उसमें क्या हुआ? उन स्थानकवासी जुगराजजी को एक करोड़ हैं, उन्होंने चार लाख दिये। बेंगलोर में मन्दिर बनाया न? बारह लाख का दिगम्बर जैन मन्दिर बनाया, परन्तु उसमें से कोई प्रसन्न हो जाए कि हमने धर्म किया, यह नहीं, बापू! धर्म कोई अलग चीज़ है, प्रभु! वह विकल्प और राग है। राग को तो यहाँ क्लेश कहते हैं, क्लेश... शरीर कहते हैं। आत्मा के ज्ञानशरीर से भिन्न शरीर कहते हैं। आहाहा!

ऐसा कहाँ है? तुम्हारे कलकत्ता में ऐसा सुनने को मिलता है? शान्तिभाई! आहाहा! क्या हो? प्रभु! तेरी महिमा का पार नहीं, नाथ! और यह हीनता करने का पार रखा नहीं। आहाहा! एक बीड़ी पीकर तलब चढ़ जाए वहाँ... आहाहा! एक रोटी कैसी कहलाये पुरणपोली... पुरणपोली की रोटी और अरबी के भुजिया खाता हो, वहाँ मानो... आहाहा! प्रभु! यह तुझे क्या हुआ? तेरी महिमा का पार नहीं और तू हीनता में इतना अधिक चला गया? आहाहा! प्रभु! तेरी महिमा करते हुए पार नहीं आता, इतना बड़ा तू और तू यह कहाँ

गया ? तू यह क्या करता है ? प्रभु ! भगवन्त ! यहाँ तो भगवन्त होने की बातें हैं, बापू ! आहाहा ! बातें देखो न की है !

यह अन्य द्रव्य का आग्रह... आत्मा के अतिरिक्त अन्य द्रव्य का आग्रह... आहाहा ! यह तीन लोक के नाथ तीर्थकर कहते हैं कि मैं परद्रव्य हूँ। यह तेरे सिवाय मैं अन्य द्रव्य हूँ, मेरा आग्रह करने से उत्पन्न होनेवाले इस विग्रह को अब छोड़कर,... आहाहा ! ऐसा आया है या नहीं इसमें ? आहाह !

मुमुक्षु : विग्रह छोड़ना सरल है या कठिन है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सरल है। इसमें है नहीं और छोड़ने का प्रश्न... उसके अस्तित्व का स्वीकार किया कि इसमें नहीं है। अनभ्यास है, इसलिए कठिन है। दो बातें रखीं। आहाहा ! एक तो यह बात सुनने को नहीं मिलती। स्थानक में जाए तो सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो। यह करे; और मन्दिरमार्गी में जाए तो पूजा करो, भक्ति करो, गिरनार और सम्मेशिखर... दिगम्बर में जाए तो वस्त्र छोड़ो, दो-चार-पाँच प्रतिमा ले लो। भगवान ! क्या होगा ? प्रभु ! यह कोई विरुद्ध की बात नहीं है, प्रभु ! यह तो मार्ग यह है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि विग्रह है। आहाहा ! स्वद्रव्य के प्रेम की दृष्टि के अतिरिक्त, स्वद्रव्य वस्तु के अतिरिक्त परद्रव्य का जितना राग का आग्रह है, वह सब विग्रह का क्लेश है। अब तो छोड़। आहाहा ! करते-करते तेरा अनन्त काल गया। प्रभु ! तो भी तुझे अभी कहीं तृप्ति नहीं हुई। आहाहा ! विषय में, भोग में, इज्जत में, कीर्ति में... आहाहा ! दस लाख मिले तो बीस लाख, और बीस लाख मिले तो पचास लाख... आहाहा ! अभी कहा न ? एक बीस लाख की मोटर। एक मोटर बीस लाख की। मैंने कहा—यह क्या ? बापू ! यह क्या करेगी ? मैंने कहा—यह महंगी क्यों ? उसका जो वह था न, अपने आता है, यहाँ आता है। नाम क्या ? उसका मोटर का ड्राइवर राजू-राजू, राजू बताता था। मैंने कहा इतनी अधिक महंगी ? तो वह बताता था। मुम्बई से यहाँ आना था, तब उसमें बैठे थे, तो वह मोटर रखी। बीस लाख की। कहा—इतना अधिक ? कहा ऐसा किया, देखो ! ऐसा करे, तब यहाँ प्रकाश हो जाए। ऐसा करे, तब काँच ऊँचा हो जाए। ऐसा करे तो ऐसा हो जाए। अरे रे ! क्या हो ? यह तो नजरों से देखा है। उसमें बैठे थे न, मुम्बई से स्टेशन आना था न, प्लेन में ? अरेरे ! क्या चीज़ ? भाई ! आहाहा !

मुमुक्षु : परद्रव्य कहाँ बाधक है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने कहा परद्रव्य बाधक है ? परद्रव्य का आग्रह कहा है । आग्रह कहा है । द्रव्य का आग्रह करने से, ऐसा कहा है । परद्रव्य नहीं कहा । समझ में आया ? परद्रव्य तो इसे स्पर्श भी नहीं करता । एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श ही नहीं करता । बहुत कठिन पड़े, बापू ! परद्रव्य का आग्रह / पकड़ । यह मेरे हैं, यह स्त्री मेरी है, पुत्र मेरा, पैसा मेरा, मकान मेरा, इज्जत मेरी, धन्धा-व्यापार चलता हो और पाँच-पच्चीस लाख की आमदनी होती हो तो वह धन्धा मेरा, हमारे अच्छे नौकर, होशियार लड़के जगे हैं तो सर्वत्र दुकान सम्हालते हैं । दस दुकानें हैं । चिमनभाई !

चिमनभाई के सेठ के पास पचास करोड़ हैं । मुम्बई में व्याख्यान में आया था । आवे तो सही । उसमें सुने । यह कहाँ कभी सुनने को मिलता नहीं । पचास करोड़ रुपये । अपने यहाँ भी साहूजी के पास चालीस करोड़ थे । गुजर गये न बेचारे ? इसके अतिरिक्त गोआ में अपने शान्तिलाल । शान्तिलाल खुशाल गोवा में, दो अरब चालीस करोड़ है । स्वयं मर गया । अभी लड़के हैं । धूल में क्या ? मर गया । उसने मार डाला - अपने माहात्म्य को छोड़कर परद्रव्य का आग्रह / पकड़-पकड़ । परद्रव्य की महिमा, परद्रव्य की विस्मयता परद्रव्य की स्वद्रव्य से अधिकता, स्वद्रव्य के अतिरिक्त परद्रव्य की भभक । आहाहा ! ऐसा जो किया, वह तो कहते हैं विग्रह-क्लेश शरीर है । अब तो छोड़ ।

विशुद्ध-पूर्ण-सहजज्ञानात्मक सौख्य की प्राप्ति के हेतु,... मुनिराज स्वयं कहते हैं । **विशुद्ध-पूर्ण-सहजज्ञानात्मक सौख्य की प्राप्ति के हेतु,...** मेरा नाथ स्वभाविक ज्ञानस्वरूप शुद्ध आनन्द है । उसकी प्राप्ति के हेतु, मेरा यह... आहाहा ! मेरा यह निज अन्तर मुझमें—**चैतन्यमात्र-चिन्तामणि में निरन्तर लगा है...** है ? देखो ! यह मुनिपना । आहाहा ! मेरा आत्मा अन्दर आनन्दमूर्ति प्रभु में । कहा न ? **विशुद्ध-पूर्ण-सहजज्ञानात्मक सौख्य...** आत्मा की प्राप्ति के हेतु, मेरा यह निज अन्तर... मेरा अन्तर निज मन । **मुझमें—चैतन्यमात्र-चिन्तामणि में निरन्तर लगा है—** उसमें आश्चर्य नहीं है, ... उसमें आश्चर्य नहीं है, क्योंकि वह तो है, उसमें लगा, उसमें क्या आश्चर्य ?—ऐसा कहते हैं । आहाहा !

ऐसा भगवान अन्दर विराजता है, उसमें मन लगा है, उसमें आश्चर्य क्या ? वह तो वस्तु का स्वरूप है । ऐसा कहा, देखो ! आहाहा ! बाहर के अटकने के रास्ते का पार नहीं

होता। छुटकारे का एक रास्ता अन्तरस्वरूप में अन्तर्दृष्टि करना। अरे रे! ऐसी बातें आवें। क्या हो? बात तो यह है। आहाहा! **चैतन्यमात्र-चिन्तामणि में...** आहाहा! चैतन्य चिन्तामणि में निरन्तर मेरा मन लगा है। आहाहा! यह लिखते समय भी मेरा मन तो वहीं लगा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! लिखते समय का विकल्प है, लिखने की क्रिया वह तो भाषा की, परमाणु की क्रिया है; मेरी क्रिया नहीं। विकल्प उठा, वह राग-क्लेश है; वह मैं नहीं। आहाहा! ऐसा कठिन लगे न? यशपालजी! दूसरे को-नये लोगों को लगे। ऐसा लगे कि यह क्या? ऐसी बात कहाँ से निकाली? सब बात सुनी है, उसमें से एक भी बात नहीं आती। ब्रत पालो, छह परबी दया पालो, छह परबी ब्रह्मचर्य पालो, ऐसी बात तो इसमें कहीं नहीं आती। अब ऐसा तो अनन्त बार किया है न, सुन न अब।

वह यह भगवान अन्दर चैतन्य की समृद्धि से भरपूर भगवान के सन्मुख तूने कभी देखा नहीं और पर का-सामने का आग्रह तूने कभी छोड़ा नहीं। आहाहा! यह अमृत बरसता है। आहाहा! यह अमृत की वाणी भगवान की है। वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमेश्वर का यह कथन है, प्रभु! तुझे जँचे, न जँचे, कठिन लगे... यह तो बहुत ऊँची बात है, ऐसा लगे। अरे! प्रभु! पहली ही बात यह है। धर्म की पहले में पहली बात यह है। आहाहा!

मेरा मन मुझमें... आहाहा! मेरा पूर्ण सहज ज्ञान-आनन्द-सुखस्वरूप, उसके लिये। मेरे पूर्ण ज्ञान और आनन्द सुख के लिये, **मेरा यह निज अन्तर मुझमें—चैतन्यमात्र-चिन्तामणि...** चैतन्यमात्र चिन्तामणि भगवान... आहाहा! फाट-फाट अन्दर से। **चैतन्यमात्र-चिन्तामणि...** प्रभु अन्दर विराजता है। आहाहा! प्रभु! तुझे उसकी कीमत नहीं। आहाहा! वह निरन्तर लगा है—**उसमें आश्चर्य नहीं है...** उसमें क्या कहते हैं आश्चर्य है? है उसमें रहना, उसमें क्या आश्चर्य है? ऐसा कहते हैं। नहीं है, उसमें जाना, वही आश्चर्य है कि अर..र..र.! वह कहाँ गया? यह क्या करता है? आहाहा!

कारण कि अमृत भोजनजनित स्वाद को जानकर देवों को अन्य भोजन से क्या प्रयोजन है? देवों की तैंतीस सागर की जिनकी आयु है, उन्हें तैंतीस हजार वर्ष में कण्ठ से अमृत की डकार आती है। उन्हें वहाँ दाल-भात बनाना पड़े, चाय बनानी पड़े, पूरणपोली की रोटी बनानी पड़े, ऐसा वहाँ नहीं है। उसे आहार की डकार हजार वर्ष में आती है। तैंतीस सागरवाले को तैंतीस हजार में आती है। दो सागरवाले को दो हजार में

आती है। कण्ठ में से अमृत आता है। जैसे यह अमृत आता है न? मुँह में अमृत की मिठास आती है न? उसी प्रकार अमृत अन्दर झरता है। आहाहा! जिसे अमृत का स्वाद आया... यहाँ उसे कहते हैं कि जहर का स्वाद किस प्रकार आवे? आहाहा! है?

जिसे, अमृत भोजनजनित स्वाद को जानकर... अमृत के भोजन के स्वाद को देवों ने जाना... आहाहा! वह देव अब खिचड़ी और दही किस प्रकार खाये? दही का घोलन करे और खिचड़ी में नमक डाले। कहते हैं न, जिसे अमृत का स्वाद आया... आहाहा! अब वह बाहर के भोजन को क्या करे? बराबर है? (जिस प्रकार अमृत भोजन के स्वाद को जानकर देवों का मन अन्य भोजन में नहीं लगता, उसी प्रकार ज्ञानात्मक सौख्य को जानकर...) ज्ञानस्वरूप आनन्द आत्मा। आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है और अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप से भरपूर भगवान है। अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर खान - निधान है। अरे रे! कब इसे जँचे? ऐसा (जानकर देवों का मन अन्य भोजन में नहीं लगता, उसी प्रकार ज्ञानात्मक सौख्य को जानकर...) वह सौख्य का निधान-खान आत्मा है। वह (चैतन्यमात्र-चिन्तामणि के अतिरिक्त अन्य कहीं नहीं लगता)। आहाहा!

चिन्तामणि चैतन्य में ज्ञान और आनन्द की रुचि के समक्ष, उसके स्वाद के समक्ष देव को अमृत के स्वाद के समक्ष दूसरे भोजन और दूधपाक तथा पूड़ी का स्वाद उन्हें नहीं आता। इनकी इच्छा भी नहीं करते। आहाहा! इसी प्रकार जिसे आत्मा के अमृत का स्वाद आया, वह दूसरे स्वाद को नहीं चाहता। इसका नाम अमृत का अनुभव और इसका नाम समकित कहा जाता है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)